Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

Original Article

भारतीय लेखन कला का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ.रवीन्द्र कुमार वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर-इतिहास, रमाबाई राजकीय महिला महाविद्यालय अकबरपुर, अंबेडकरनगर।

Email: ravigdc81@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180121
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 1(A)
Pp. 100-104
January - 2026
Submitted: 17 Dec. 2025
Revised: 27 Dec. 2025
Accepted: 12 Jan. 2026
Published: 31 Jan. 2026

शोध सारांश

प्राचीन भारत में लेखन–कला का विकास भारतीय सभ्यता की बौद्धिक चेतना, प्रशासनिक व्यवस्था, धार्मिक विचारधाराओं तथा सांस्कृतिक निरंतरता का मूल आधार रहा है। यद्यपि भारतीय परंपरा में मौखिक संस्कृति (श्रुति–स्मृति) को अत्यधिक महत्व दिया गया, तथापि लेखन–कला ने ज्ञान को स्थायित्व प्रदान कर उसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखने में निर्णायक भूमिका निभाई। । लेखन ने मानव विचारों, अनुभवों और ज्ञान को स्थायित्व प्रदान कर सभ्यता को स्मृति और परंपरा से जोड़ा। भारतीय संदर्भ में लेखन–कला का विकास एक क्रमिक और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसकी जड़ें प्रागैतिहासिक काल की प्रतीकात्मक और चित्रात्मक अभिव्यक्तियों में निहित हैं।सिंधु घाटी सभ्यता में प्राप्त अपठनीय लिपि प्राचीन भारत की संगठित लेखन–परंपरा का प्रथम सशक्त प्रमाण है। यद्यपि इस लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, फिर भी यह उस काल की उन्नत प्रशासनिक और आर्थिक संरचना को दर्शाती है। वैदिक काल में लेखन की अपेक्षा मौखिक परंपरा को प्रधानता मिली, जहाँ वेदों का संरक्षण श्रुति–पद्धति द्वारा किया गया। इससे भारतीय संस्कृति में स्मृति और वाणी के महत्व का बोध होता है।छठी शताब्दी ईसा पूर्व के पश्चात् ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों के विकास के साथ लेखन–कला का संस्थागत रूप सामने आया। मौर्य काल, विशेषतः अशोक के अभिलेख, लेखन–कला के सामाजिक और नैतिक उपयोग के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आगे चलकर गुप्त काल में लेखन–कला का अत्यधिक उत्कर्ष हुआ, जब लिपियाँ अधिक परिष्कृत हुईं और साहित्य, विज्ञान तथा दर्शन के ग्रंथों की व्यापक रचना हुई। यह शोध–लेख प्रागैतिहासिक प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों से लेकर गुप्तकालीन परिष्कृत लिपियों और ग्रंथ–परंपरा तक, प्राचीन भारत में लेखन–कला के क्रमिक विकास का ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द *: लेखन–कला, सिंधु लिपि, ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त लिपि, ध्वन्यात्मक, अभिलेख, मौखिक परंपरा, चित्रात्मक।*

लेखन–कला मानव सभ्यता के विकास की आधारशिला मानी जाती है। विचारों, अनुभवों और ज्ञान को स्थायी रूप प्रदान करने की क्षमता ने मानव समाज को स्मृति, परंपरा और इतिहास से जोड़ा। भारतीय सभ्यता के संदर्भ में लेखन–कला का महत्व और भी व्यापक हो जाता है, क्योंकि यहाँ ज्ञान के संरक्षण की एक सुदीर्घ और सशक्त परंपरा विकसित हुई। प्राचीन भारत में लेखन केवल संप्रेषण का साधन नहीं था, बल्कि यह धर्म, दर्शन, साहित्य, प्रशासन और सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग था। यद्यपि भारतीय संस्कृति में विशेषतः वैदिक काल में मौखिक परंपरा को विशेष महत्व प्राप्त था, तथापि कालांतर में लेखन–कला ने ज्ञान को स्थायित्व प्रदान कर उसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखने का कार्य किया। सिंधु घाटी सभ्यता की अपठनीय लिपि से लेकर ब्राह्मी, खरोष्ठी, शारदा और देवनागरी जैसी विकसित लिपियों तक, भारतीय लेखन–परंपरा एक निरंतर विकास–क्रम को दर्शाती है। इन लिपियों के माध्यम से न केवल धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथों का संरक्षण हुआ, बल्कि प्रशासनिक व्यवस्था और सामाजिक जीवन को भी सुव्यवस्थित रूप मिला।

प्राचीन भारत में प्रयुक्त विविध लेखन सामग्रियाँ यथा पत्थर, ताम्रपत्र, भोजपत्र और ताड़पत्र तथा लेखन तकनीकें यह प्रमाणित करती हैं कि लेखन–कला एक परिष्कृत और व्यवस्थित प्रक्रिया थी। इस शोध का उद्देश्य प्राचीन भारत में लेखन–कला के विकास, उसकी लिपियों, सामग्रियों और सांस्कृतिक महत्व का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है, जिससे भारतीय सभ्यता की बौद्धिक गहराई और सांस्कृतिक निरंतरता को समझा जा सके।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ.रवीन्द्र कुमार वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर-इतिहास, रमाबाई राजकीय महिला महाविद्यालय अकबरपुर, अंबेडकरनगर।

How to cite this article:
वर्मा, . रवीन्द्र . कुमार . (2026). भारतीय लेखन-कला का ऐतिहासिक विश्लेषण. Journal of Research & Development, 18(1(A)), 100–104. https://doi.org/10.5281/zenodo.18479281

Quick Response Code:

Website: https://jrdrvb.org/

DOI: 10.5281/zenodo.18479281

OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

लेखन के पूर्ण विकसित होने से पहले मानव ने भावों और सूचनाओं को व्यक्त करने के लिए चित्रों, संकेतों और प्रतीकों का प्रयोग किया। भीमबेटका, आदमगढ़ आदि शैलाश्रयों की गुफा–चित्रकला इस अवस्था का प्रमाण है, जहाँ शिकार, नृत्य और दैनिक जीवन के दृश्य अंकित हैं। सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग 2500–1900 ई.पू.) भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में से एक थी। इस सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण और रहस्यमय उपलब्धियों में इसकी लेखन–कला मानी जाती है। सिंधु सभ्यता से प्राप्त मुहरों, ताम्रपटों, मिट्टी की गोलियों और अन्य पुरावशेषों पर अंकित लिपि यह प्रमाणित करती है कि तत्कालीन समाज लेखन और प्रतीकात्मक संप्रेषण से भली–भांति परिचित था।

सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि को सामान्यतः सिंधु लिपि कहा जाता है। यह लिपि मुख्यतः चित्रात्मक (Pictographic) और प्रतीकात्मक स्वरूप की थी। इसमें पशु, मानव आकृतियाँ, ज्यामितीय चिन्ह और विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। अब तक लगभग 400–450 अलग–अलग चिन्ह पहचाने जा चुके हैं। अधिकांश अभिलेख अत्यंत संक्षिप्त हैं, जिनमें सामान्यतः 5 से 7 चिन्ह ही पाए जाते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह लिपि संभवतः व्यापारिक, प्रशासनिक या धार्मिक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होती थी। लेखन–कला का सर्वाधिक प्रमाण मुहरों पर मिलता है। ये मुहरें पत्थर या फैयंस से निर्मित होती थीं और उन पर पशु आकृतियों के साथ लिपि के चिह्न अंकित होते थे। इनका प्रयोग संभवतः व्यापारिक वस्तुओं की पहचान, स्वामित्व निर्धारण या प्रशासनिक नियंत्रण के लिए किया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ ताम्रपटों और मिट्टी की गोलियों पर भी लेखन के चिह्न प्राप्त हुए हैं, जो लेखन के व्यापक प्रयोग की ओर संकेत करते हैं।

सिंधु लिपि की एक प्रमुख विशेषता यह है कि आज तक इसे पढ़ा नहीं जा सका है। इसके अपठनीय होने के पीछे कई कारण हैं– लिपि के अभिलेख बहुत छोटे हैं, द्विभाषी अभिलेखों का अभाव है और भाषा की प्रकृति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इसे द्रविड़ भाषाओं से जोड़ते हैं, जबकि अन्य इसे किसी स्वतंत्र भाषा–परिवार का अंग मानते हैं। इसके बावजूद, सिंधु घाटी सभ्यता की लेखन–कला का ऐतिहासिक महत्व अत्यंत व्यापक है। यह लेखन–कला इस तथ्य को सिद्ध करती है कि सिंधु सभ्यता एक संगठित, सुसंस्कृत और प्रशासनिक रूप से विकसित समाज थी। लेखन के माध्यम से व्यापार, शासन और सामाजिक गतिविधियों का संचालन किया जाता था। इस प्रकार, सिंधु घाटी सभ्यता की लेखन–कला भारतीय लेखन–परंपरा की प्रथम सशक्त अभिव्यक्ति मानी जा सकती है, जिसने आगे चलकर भारत की समृद्ध लिपि–संस्कृति की आधारशिला रखी।

ब्राह्मी लिपि प्राचीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली लिपियों में से एक मानी जाती है। इसे भारतीय लिपि–परंपरा की जननी कहा जाता है, क्योंकि आगे चलकर भारत और दक्षिणदृपूर्व एशिया की अधिकांश लिपियों का विकास इसी से हुआ। ब्राह्मी लिपि का प्रचलन मुख्यतः ईसा पूर्व छठी शताब्दी से आरंभ होकर मौर्य काल में व्यापक रूप से दिखाई देता। ब्राह्मी लिपि का सर्वप्रथम स्पष्ट और प्रामाणिक प्रयोग मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में मिलता है। अशोक के शिलालेखों और स्तंभलेखों में इस लिपि का प्रयोग जनसाधारण तक अपने नैतिक उपदेश और प्रशासनिक आदेश पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया। यह लिपि सामान्यतः बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी, जो इसे खरोष्ठी लिपि से भिन्न बनाती है। इसकी वर्णमाला में स्वर और व्यंजन दोनों के लिए पृथक चिह्न थे, तथा इसमें मात्राओं का सुव्यवस्थित प्रयोग दिखाई देता है।ब्राह्मी लिपि की संरचना ध्वन्यात्मक (Phonetic) थी, अर्थात् प्रत्येक चिह्न किसी न किसी ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता था। यही कारण है कि यह लिपि संस्कृत, प्राकृत और पालि जैसी भाषाओं के लेखन के लिए अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुई। इसके अक्षर अपेक्षाकृत सरल और सीधी रेखाओं वाले थे, जिससे पत्थर, ताम्रपत्र और ताड़पत्र जैसी विभिन्न लेखन सामग्रियों पर इसे आसानी से उत्कीर्ण किया जा सकता था।

इतिहासकारों के मध्य ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति को लेकर मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान इसे स्वदेशी विकास का परिणाम मानते हैं, जबकि अन्य इसे पश्चिम एशिया की सेमिटिक लिपियों से प्रभावित मानते हैं। तथापि, अधिकांश आधुनिक विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्राह्मी लिपि भारतीय परिस्थितियों और भाषिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित एक मौलिक लिपि थी। ब्राह्मी लिपि का ऐतिहासिक महत्व अत्यंत व्यापक है। गुप्त काल में इससे गुप्त लिपि का विकास हुआ, जिसने आगे चलकर देवनागरी, बंगाली, गुजराती, शारदा, कन्नड़, तेलुगु और तमिल जैसी अनेक लिपियों को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त, ब्राह्मी लिपि का प्रभाव श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, कंबोडिया और इंडोनेशिया तक फैला, जिससे भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव का विस्तार हुआ। निष्कर्षतः, ब्राह्मी लिपि केवल एक लेखन प्रणाली नहीं थी, बल्कि यह प्राचीन भारत की बौद्धिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक चेतना की वाहक थी। इसने भारतीय इतिहास को स्थायित्व प्रदान किया और ज्ञान–संरक्षण की परंपरा को सुदृढ़ किया। इसलिए ब्राह्मी लिपि को भारतीय सभ्यता की अक्षरात्मक आधारशिला कहा जा सकता है।

खरोष्ठी लिपि प्राचीन भारत की एक महत्वपूर्ण लिपि थी, जिसका प्रयोग मुख्यतः उत्तर–पश्चिम भारत में किया जाता था। यह लिपि लगभग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से तीसरी शताब्दी ईस्वी तक प्रचलन में रही। ब्राह्मी लिपि के साथ–साथ खरोष्ठी लिपि ने भी प्राचीन भारतीय लेखन–कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया, विशेषतः गांधार, तक्षशिला और आधुनिक पाकिस्तान व अफगानिस्तान के क्षेत्रों में। खरोष्ठी लिपि की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसे दाएँ से बाएँ लिखा जाता था। यह विशेषता इसे ब्राह्मी लिपि से पूर्णतः भिन्न बनाती है। विद्वानों का मत है कि खरोष्ठी लिपि का विकास अरामाइक लिपि के प्रभाव से हुआ। अरामाइक लिपि पश्चिम एशिया में प्रचलित थी और फारसी शासन के माध्यम से उत्तर–पश्चिम भारत तक पहुँची। इसी प्रभाव के कारण खरोष्ठी लिपि का लेखन–क्रम और कुछ अक्षर–रूप सेमिटिक लिपियों से मिलते–जुलते प्रतीत होते हैं। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग मुख्यतः प्राकृत भाषा के लेखन के लिए किया गया। इस लिपि में भी स्वर और व्यंजन के लिए अलग–अलग चिह्न थे, तथा मात्राओं का प्रयोग किया जाता था। हालाँकि इसकी संरचना ब्राह्मी की अपेक्षा कुछ अधिक जटिल मानी जाती है। खरोष्ठी लिपि के अक्षर अपेक्षाकृत कोणीय और रेखात्मक थे, जो पत्थर और ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करने के लिए उपयुक्त थे। खरोष्ठी लिपि के महत्वपूर्ण प्रमाण मौर्य काल से प्राप्त होते हैं। सम्राट अशोक के कुछ शिलालेख, विशेषतः उत्तर–पश्चिमी भारत में पाए गए अभिलेख, खरोष्ठी लिपि में लिखे गए हैं। इसके अतिरिक्त, गांधार क्षेत्र से प्राप्त बौद्ध ग्रंथ, सिक्के और अभिलेख भी खरोष्ठी लिपि के प्रयोग को प्रमाणित करते हैं। बौद्ध धर्म के प्रसार में इस लिपि की भूमिका विशेष रूप से

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

उल्लेखनीय रही, क्योंकि गांधार क्षेत्र बौद्ध शिक्षा और कला का प्रमुख केंद्र था। खरोष्ठी लिपि का ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी है क्योंकि इसे पढ़ा जा चुका है, जबकि सिंधु लिपि अब तक अपठनीय है। आधुनिक काल में जेम्स प्रिंसेप और अन्य विद्वानों के प्रयासों से खरोष्ठी लिपि को समझा गया, जिससे उत्तर–पश्चिम भारत के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा। लगभग तीसरी शताब्दी ईस्वी के बाद खरोष्ठी लिपि का प्रयोग धीरे–धीरे समाप्त हो गया और इसका स्थान ब्राह्मी तथा उससे विकसित लिपियों ने ले लिया। इसके बावजूद, खरोष्ठी लिपि प्राचीन भारत की बहुल भाषिक और सांस्कृतिक परंपरा का सशक्त प्रमाण है। निष्कर्षतः, खरोष्ठी लिपि न केवल एक लेखन प्रणाली थी, बल्कि यह भारत और पश्चिम एशिया के सांस्कृतिक संपर्कों की साक्षी भी थी। इसने प्राचीन भारतीय इतिहास, प्रशासन और धर्म के अध्ययन में अमूल्य योगदान दिया और भारतीय लेखन–कला की विविधता को उजागर किया।

शारदा लिपि प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत की एक महत्वपूर्ण लिपि है, जिसका विकास मुख्यतः उत्तर भारत, विशेषकर कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और पंजाब के पर्वतीय क्षेत्रों में हुआ। इसका प्रचलन लगभग 7वीं शताब्दी ईस्वी से 13वीं शताब्दी ईस्वी तक व्यापक रूप से रहा। शारदा लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शाखा, विशेषतः गुप्त लिपि से माना जाता है। शारदा लिपि का नामकरण देवी शारदा (सरस्वती) के नाम पर हुआ, जो ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। कश्मीर को प्राचीन काल में शारदादेश भी कहा जाता था, जिससे इस लिपि का सांस्कृतिक महत्व और अधिक स्पष्ट होता है। कश्मीरी ब्राह्मणों और विद्वानों द्वारा इस लिपि का व्यापक प्रयोग धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक ग्रंथों के लेखन में किया गया। शारदा लिपि की संरचना ध्वन्यात्मक थी, जिसमें स्वर और व्यंजन के लिए पृथक चिह्न थे। यह लिपि बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी। इसके अक्षर अपेक्षाकृत कोणीय, स्पष्ट और सीधी रेखाओं वाले होते थे, जो इसे देवनागरी से अलग पहचान देते हैं। प्रारंभिक शारदा लिपि में गोलाई कम थी, किंतु कालांतर में इसके अक्षरों में कुछ वक्रता भी दिखाई देने लगी। शारदा लिपि का प्रयोग मुख्यतः संस्कृत और कुछ हद तक कश्मीरी भाषा के लेखन में हुआ। कश्मीर में रचित अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ–जैसे दर्शन, व्याकरण, तंत्र और काव्य संबंधी रचनाएँ–इसी लिपि में लिखी गईं। इसके अतिरिक्त, मंदिरों के अभिलेख, दान–पत्र और ताम्रलेख भी शारदा लिपि में प्राप्त होते हैं, जो इसके प्रशासनिक प्रयोग को भी दर्शाते हैं।

लगभग 13वीं शताब्दी के बाद शारदा लिपि का प्रयोग धीरे–धीरे कम होने लगा। उत्तर भारत में देवनागरी लिपि के प्रसार और कश्मीर में नस्तालिक (फारसी–उर्दू) लिपि के प्रभाव के कारण शारदा लिपि हाशिये पर चली गई। तथापि, आज भी कश्मीरी पंडित समुदाय में धार्मिक अनुष्ठानों और पारंपरिक ग्रंथों में शारदा लिपि का सीमित प्रयोग देखा जा सकता है। निष्कर्षतः, शारदा लिपि उत्तर भारतीय लेखन–परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह न केवल संस्कृत साहित्य और कश्मीरी सांस्कृतिक विरासत की वाहक रही, बल्कि भारतीय लिपियों के विकास क्रम में भी इसका विशेष स्थान है।

'कीलाक्षर' शब्द दो घटकों से मिलकर बना है– कील और अक्षर। यहाँ 'कील' का तात्पर्य नुकीले, संकुचित या संयुक्त रेखात्मक रूप से है, जबकि 'अक्षर' लिपि की मूल इकाई को सूचित करता है। इस प्रकार कीलाक्षर वह लेखन–शैली है, जिसमें अक्षरों को पूर्ण एवं विस्तारपूर्वक न लिखकर, उनके आवश्यक संकेतों या संक्षिप्त रूपों के माध्यम से अंकित किया जाता है। यह शैली आधुनिक 'शॉर्टहैंड' के समान मानी जा सकती है, यद्यपि इसकी संरचना पूर्णतः भारतीय लिपि–परंपरा पर आधारित रही है। कीलाक्षर का विकास मुख्यतः ऐतिहासिक एवं मध्यकालीन भारत में हुआ, जब प्रशासनिक अभिलेखों, दानपत्रों, ताम्रपत्रों और व्यापारिक लेखों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई। राजकीय आदेश, भूमि–अनुदान, कर–संबंधी विवरण तथा न्यायिक निर्णयों को सीमित स्थान में शीघ्रता से अंकित करना आवश्यक था। ऐसी परिस्थितियों में पूर्ण एवं आलंकारिक लेखन की अपेक्षा संक्षिप्त लेखन अधिक व्यावहारिक सिद्ध हुआ। इसी आवश्यकता ने कीलाक्षर जैसी लेखन–शैली को जन्म दिया।
कीलाक्षर किसी एक लिपि तक सीमित नहीं था। इसके रूप ब्राह्मी, शारदा, नागरी, प्राचीन देवनागरी तथा क्षेत्रीय लिपियों में देखे जा सकते हैं।

•ब्राह्मी परंपरा में अक्षरों की रेखाओं को जोड़कर या अनावश्यक घुमाव हटाकर संक्षिप्त संकेत बनाए गए।

•शारदा लिपि में हिमालयी क्षेत्रों के लेखों में अक्षर अत्यंत संकुचित और कोणात्मक रूप में मिलते हैं, जिन्हें कीलाक्षरात्मक कहा जा सकता है।

•नागरी–देवनागरी परंपरा में दफ्तरी लेखन तथा पांडुलिपियों में कई बार मात्राओं और संयुक्ताक्षरों को संक्षेप में लिखा गया।

कीलाक्षर भारतीय लेखन–परंपरा की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का परिचायक है। यह दर्शाता है कि भारतीय समाज ने केवल सौंदर्यपूर्ण लेखन ही नहीं, बल्कि कार्यकुशल एवं समय–संरक्षणकारी लेखन–शैलियों का भी विकास किया। साथ ही, कीलाक्षर के अध्ययन से इतिहासकारों और पुरालेखविदों को अभिलेखों की सही व्याख्या करने में सहायता मिलती है, क्योंकि कई बार संक्षिप्त संकेतों को समझे बिना अभिलेख का आशय स्पष्ट नहीं हो पाता। यद्यपि कीलाक्षर अत्यंत उपयोगी था, परंतु इसकी सबसे बड़ी सीमा इसकी दुर्बोधता थी। प्रशिक्षित पाठक के बिना इसे पढ़ना कठिन था। समय के साथ, जब मुद्रण–प्रणाली और मानकीकृत लिपियाँ विकसित हुईं, तब कीलाक्षर का प्रयोग धीरे–धीरे कम होता गया। निष्कर्षतः, कीलाक्षर भारतीय लेखन–इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण, किंतु उपेक्षित अध्याय है। यह न केवल प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन था, बल्कि लिपियों के विकास–क्रम में संक्षेपण और संकेतात्मक लेखन की प्रवृत्ति का साक्ष्य भी है। कीलाक्षर का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि भारतीय लिपियाँ केवल सौंदर्य या धार्मिक प्रयोजनों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन की जटिल आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालने में सक्षम थीं।

देवनागरी लिपि भारतीय भाषाओं की सर्वाधिक प्रचलित और समृद्ध लिपियों में से एक है। वर्तमान समय में संस्कृत, हिंदी, मराठी, नेपाली, कोंकणी सहित अनेक भाषाएँ इसी लिपि में लिखी जाती हैं। देवनागरी न केवल एक लेखन प्रणाली है, बल्कि यह भारतीय बौद्धिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा की सशक्त वाहक भी मानी जाती है। देवनागरी लिपि का विकास

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शाखा से हुआ। ब्राह्मी से आगे चलकर गुप्त लिपि, फिर उत्तर–नागरी और अंततः पूर्ण विकसित देवनागरी लिपि का रूप सामने आया। इसका व्यवस्थित और स्पष्ट स्वरूप लगभग 10वीं–12वीं शताब्दी ईस्वी में स्थापित हुआ।"देवनागरी" शब्द का अर्थ है– देवों की नगरी की लिपि, जो इसके पवित्र और प्रतिष्ठित स्वरूप को दर्शाता है। देवनागरी लिपि की सबसे प्रमुख विशेषता इसकी शिरोरेखा (माथे की रेखा) है, जो प्रत्येक शब्द के अक्षरों को जोड़ती है। यह लिपि बाएँ से दाएँ लिखी जाती है और इसकी संरचना पूर्णतः ध्वन्यात्मक है। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए लगभग निश्चित अक्षर उपलब्ध है, जिससे उच्चारण और लेखन में स्पष्टता बनी रहती है। स्वर, व्यंजन, मात्राएँ, अनुस्वार, विसर्ग आदि का वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित प्रयोग इसे अन्य लिपियों से विशिष्ट बनाता है।देवनागरी लिपि संस्कृत जैसी शास्त्रीय भाषा के लिए अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुई। वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शन–ग्रंथ, काव्य और नाट्य साहित्यकृइन सभी का संरक्षण देवनागरी लिपि के माध्यम से संभव हुआ। मध्यकाल में भक्ति साहित्य तथा आधुनिक काल में हिंदी साहित्य का विशाल भंडार भी इसी लिपि में रचित है। इस प्रकार देवनागरी ने भारतीय ज्ञान–परंपरा को पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखने में केंद्रीय भूमिका निभाई। प्रशासनिक और शैक्षिक क्षेत्र में भी देवनागरी लिपि का महत्व निरंतर बढ़ता गया। आधुनिक भारत में हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलने के साथ देवनागरी लिपि को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। आज यह लिपि मुद्रण, शिक्षा, डिजिटल माध्यम और अंतरराष्ट्रीय शोध–कार्य में व्यापक रूप से प्रयुक्त हो रही है। निष्कर्षतः, देवनागरी लिपि भारतीय लिपि–परंपरा की परिपक्व अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी वैज्ञानिक संरचना, सांस्कृतिक गहराई और व्यापक उपयोगिता इसे न केवल भारत, बल्कि विश्व की प्रमुख लिपियों में स्थान दिलाती है। यह लिपि भारतीय सभ्यता की अक्षरात्मक पहचान और बौद्धिक निरंतरता का सशक्त प्रतीक है।

प्राचीन भारत में लेखन–कला के विकास में लेखन सामग्री और तकनीक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। किसी भी सभ्यता में लेखन केवल लिपि तक सीमित नहीं होता, बल्कि जिस माध्यम पर लिखा जाता है और जिस विधि से लेखन किया जाता है, वह भी बौद्धिक एवं सांस्कृतिक प्रगति को दर्शाता है। प्राचीन भारत में विविध भौगोलिक परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न लेखन सामग्रियों और तकनीकों का प्रयोग किया गया।प्राचीन काल में लेखन के लिए सबसे प्राचीन और स्थायी माध्यम पत्थर था। शिलालेख और स्तंभलेख विशेष रूप से राजकीय घोषणाओं,धार्मिक उपदेशों और प्रशासनिक आदेशों के लिए प्रयुक्त होते थे। मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेख इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। पत्थर पर लेखन के लिए धातु की नुकीली छेनी और हथौड़ी का प्रयोग किया जाता था, जिससे अक्षर उत्कीर्ण किए जाते थे। यह तकनीक श्रमसाध्य थी, किंतु लेखन को दीर्घकालिक स्थायित्व प्रदान करती थी।ताम्रपत्र भी प्राचीन भारत की एक महत्वपूर्ण लेखन सामग्री थी। इनका प्रयोग विशेषतः भूमि–दान, अनुदान और राजकीय आदेशों को सुरक्षित रखने के लिए किया जाता था। ताम्रपत्रों पर लेखन धातु की शलाका से उत्कीर्ण किया जाता था। इसकी विशेषता यह थी कि यह पत्थर की अपेक्षा हल्का और स्थानांतरण में सुविधाजनक था, साथ ही अपेक्षाकृत टिकाऊ भी था।ग्रंथ–लेखन के लिए प्राचीन भारत में भोजपत्र और ताड़पत्र का व्यापक प्रयोग हुआ। भोजपत्र मुख्यतः कश्मीर और हिमालयी क्षेत्रों में उपलब्ध था, जबकि ताड़पत्र दक्षिण भारत और तटीय क्षेत्रों में अधिक प्रचलित था। इन पर लेखन के लिए नुकीली शलाका से अक्षर खरोंचे जाते थे, जिन पर बाद में स्याही या रंग रगड़कर अक्षर उभारे जाते थे। यह तकनीक ग्रंथों की प्रतिलिपि बनाने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। लेखन के लिए प्रयुक्त स्याही प्रायः प्राकृतिक पदार्थों से बनाई जाती थी–जैसे काजल, वनस्पति–रस, लौह–लवण और गोंद। लेखन उपकरणों में लकड़ी, धातु या हड्डी से बनी कलमों का प्रयोग भी होता था, विशेषतः कागज के प्रचलन के बाद। तकनीकी दृष्टि से लेखन केवल सूचना–संप्रेषण का साधन नहीं था, बल्कि यह एक कुशल कला भी थी। सुलेख का विकास, अक्षरों की समानता और ग्रंथों की सजावट लेखन–कला की उन्नत अवस्था को दर्शाती है। निष्कर्षतः, प्राचीन भारत में लेखन सामग्री और तकनीक का विकास लेखन–कला की आधारशिला था। इन सामग्रियों और विधियों ने भारतीय ज्ञान–परंपरा को स्थायित्व प्रदान किया और इतिहास, धर्म तथा साहित्य को सुरक्षित रखने में अमूल्य योगदान दिया।

लेखन–कला और भारतीय संस्कृति के बीच संबंध अत्यंत घनिष्ठ और बहुआयामी रहा है। लेखन केवल विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन नहीं, बल्कि यह भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक स्मृति, बौद्धिक परंपरा और ऐतिहासिक चेतना का आधार भी रहा है। प्राचीन भारत में लेखन–कला ने धर्म, दर्शन, साहित्य, प्रशासन और सामाजिक जीवन को संगठित एवं स्थायित्व प्रदान किया। भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट विशेषता यह रही कि यहाँ मौखिक और लिखित परंपराएँ समानांतर रूप से विकसित हुईं। प्रारंभिक काल में वेदों का संरक्षण श्रुति–परंपरा के माध्यम से हुआ, किंतु कालांतर में जब लेखन–कला का विकास हुआ, तब इसी मौखिक ज्ञान को लिपिबद्ध कर स्थायी रूप प्रदान किया गया। इस प्रक्रिया ने भारतीय ज्ञान को काल के विनाश से बचाया और उसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखा। धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से लेखन–कला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध त्रिपिटक और जैन आगम जैसे ग्रंथों का संरक्षण लेखन के माध्यम से ही संभव हो सका। इन ग्रंथों ने भारतीय संस्कृति की नैतिकता, जीवन–दृष्टि और आध्यात्मिक चिंतन को दिशा दी। मंदिरों, मठों और विहारों में ग्रंथ–लेखन और प्रतिलिपि निर्माण को धार्मिक कर्तव्य माना गया, जिससे लेखन–कला को सांस्कृतिक सम्मान प्राप्त हुआ।

लेखन–कला ने भारतीय साहित्य के विकास में भी केंद्रीय भूमिका निभाई। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आगे चलकर आधुनिक भारतीय भाषाओं का विशाल साहित्य लेखन के माध्यम से ही विकसित हुआ। काव्य, नाटक, कथा और वैज्ञानिक ग्रंथों ने भारतीय संस्कृति को बौद्धिक गहराई प्रदान की। कालिदास, भास, भवभूति, बाणभट्ट जैसे साहित्यकारों की रचनाएँ लेखन–कला के बिना संभव नहीं थीं।प्रशासन और सामाजिक संगठन में भी लेखन–कला का विशेष महत्व रहा। राजकीय आदेश, भूमि–दान पत्र, अभिलेख और विधि–संहिताएँ लेखन के माध्यम से ही संरक्षित की गईं। अशोक के अभिलेखों से लेकर गुप्तकालीन ताम्रपत्रों तक, लेखन–कला ने राज्य और समाज के संबंधों को स्पष्ट रूप प्रदान किया।सांस्कृतिक दृष्टि से लेखन–कला ने इतिहास–बोध को जन्म दिया। अभिलेखों और ग्रंथों के माध्यम से भारतीय समाज ने अपने अतीत को समझने और संजोने की परंपरा विकसित की। यह परंपरा भारतीय संस्कृति की निरंतरता और आत्मबोध का आधार बनी।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

निष्कर्षतः, लेखन–कला भारतीय संस्कृति की आत्मा के समान है। इसने ज्ञान को स्थायित्व, संस्कृति को निरंतरता और समाज को ऐतिहासिक चेतना प्रदान की। लेखन–कला के बिना भारतीय सभ्यता की गहराई, व्यापकता और दीर्घायु परंपरा की कल्पना संभव नहीं है। प्राचीन भारत में लेखन–कला का विकास भारतीय सभ्यता की बौद्धिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक प्रगति का सशक्त प्रमाण है। यह विकास किसी एक काल या क्षेत्र तक सीमित न होकर एक दीर्घकालीन, क्रमिक और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में सामने आता है। प्रागैतिहासिक काल की प्रतीकात्मक एवं चित्रात्मक अभिव्यक्तियों से आरंभ होकर सिंधु घाटी सभ्यता की संगठित लिपि–प्रणाली, वैदिक काल की सुदृढ़ मौखिक परंपरा और आगे चलकर ब्राह्मी, खरोष्ठी, शारदा तथा देवनागरी जैसी विकसित लिपियों तक, लेखन–कला ने भारतीय संस्कृति को निरंतर समृद्ध किया। लेखन–कला ने ज्ञान को केवल संचित ही नहीं किया, बल्कि उसे स्थायित्व प्रदान कर ऐतिहासिक स्मृति का निर्माण किया। धार्मिक ग्रंथों, साहित्यिक कृतियों, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचारों तथा प्रशासनिक अभिलेखों के संरक्षण में इसकी भूमिका निर्णायक रही। लेखन के माध्यम से ही भारतीय समाज ने अपने नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिक चिंतन और सामाजिक व्यवस्थाओं को पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखा। यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में मौखिक और लिखित संस्कृति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक रही हैं। जहाँ मौखिक परंपरा ने ज्ञान की शुद्धता और जीवंतता को बनाए रखा, वहीं लेखन–कला ने उसे स्थायित्व और व्यापकता प्रदान की। लेखन सामग्री और तकनीकों के विकास ने इस प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाया। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लेखन–कला भारतीय सभ्यता की आत्मा के समान है। इसके बिना न तो भारतीय इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है और न ही सांस्कृतिक निरंतरता की सम्यक् समझ। लेखन–कला ने भारतीय संस्कृति को कालातीत बनाया और उसे विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध बौद्धिक परंपराओं में विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. राणा,एस.एस, भारतीय अभिलेख, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1978।
2. सहाय ,शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. नारायण, अवध किशोर एवं ठाकुर प्रसाद वर्मा,प्राचीन भारतीय लिपिशास्त्र और अभिलेखिकी,वाराणसी,1970।
4. पाण्डेय,राजबली, भारतीय पुरालिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978।
5. जार्ज ब्यूलर, (हिन्दी अनु) मंगलनाथ सिंह, भारतीय पुरालिपि शास्त्र, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली,1966।
6. गुणाकर मुले, अक्षरकथा. प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली 2003।
7. राही,ईश्वरचन्द्र, लेखनकथा का इतिहास (खण्ड 1–2), हिन्दी संस्थान,लखनऊ,उ.प्र.,1983।
8. चटर्जी डॉ0 सुनीति कुमार– भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली, 1879।
9. ओझा गौरी शकर हीराचन्द, प्राचीन भारतीय लिपिमाला, राजस्थानी ग्रंथाकार जोधपर, 1918।
10. सैनी,रणजीत सिंह, अभिलेखमंजूषा, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन दिल्ली–2000।
11. झा बन्धु, उत्कीर्णलेखपंचकम, वाराणसी, 1968।
12. कम्बोज जियालाल, उत्कीर्णलेखस्तबकम,, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
13. सरकार,डी.सी (हिन्दी अनु.) कृष्णदत्त वाजपेयी, भारतीय पुरालिपि विद्या,विद्यानिधि प्रकाशन,दिल्ली, 1996।
14. Baines, John. Bennet, John & Houston,Stephen (Eds.) The Disappearance of Writing Systems Equinox Publishing, London-2008.
15. Diringer, David The Alphabet- A Key to the Libtory of manking, Munshiram Manoharlal Publishers. Pvt.Ltd. New Delhi-1948.